विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष १२ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२६ • आश्विन पूर्णिमा [शक] • दि. ३-१०-१९८२ • अंक ४

प्रवचन-प्रवाह

नवा दिन

साधनाके ९ दिन पूरे हुए। नौ दिन तक जो अभ्यास किया उसे भली-भांति समझें। क्या किया? ऐसे क्यों किया? क्या लाभ है इसका दैनिक जीवन में? यदि साधना का जीवनमें उपयोग नहीं होता है तो यह भी कर्मकांड बनकर रह जायेगी, एक धार्मिक अनुष्ठान बनकर रह जायेगी। धर्मका लाभ इसी जीवनमें मिलना चाहिए, तब तो धर्म धर्म है अन्यथा धोखा है। धर्मके नाम पर कितनी भ्रांतियां चलती हैं?

यह साधना आत्मदर्शनकी साधना है, स्वदर्शनकी साधना है। अपने आपको देखनेकी साधना है। अपने आपको कैसे देखना है? जो सच्चाई अपने बारेमें इस क्षण प्रकट हुई है, उसे देखना है। कितनी भी अप्रिय क्यों न हो? सच्चाई तो सच्चाई है। यदि हम सदा अप्रियसे मुँह मोड़ते रहेंगे, पलायन करते रहेंगे तो सच्चाई से विमुख हो जायेंगे। यदि हममें कोई दोष है, खोट है तो उसे भली-भांति जानना चाहिए, स्वीकार करना चाहिए। तब ही दोष निकाल सकेंगे।

जीवनमें एक बड़ी भ्रांति चलती है। इसका कारण है कि हम सदैव बहिर्मुखी ही रहते हैं। सदा औरोंको ही देखते हैं, बाहरकी परिस्थितियोंको ही देखते हैं अतः दोष हमेशा बाहर ही देखते हैं। स्वयं दुःखी हुए तो दुःखका कारण बाहर ही ढूंढते हैं। बाहर की घटना, स्थिति, वस्तु, व्यक्तिको ही अपने दुखःका कारण मानते हैं और उसे ही सुधारनेमें अपना सारा श्रम लगाते हैं। कैसे बाहरकी स्थिति मनोनुकूल हो जाय? कैसे बाहरका हर व्यक्ति हमारे मनोनुकूल आचरण करने लगे। इसके लिए सारा जीवन लगा देते हैं। पर असफलता ही हाथ लगती है। दुःख दूर नहीं होते।

अपने बारेमें एक मिथ्या कल्पना बना ली कि मैं बड़ा शुद्ध हूं, निर्मल हूं, निर्लिप्त हूं, मुक्त हूं। पर सच्चाई यह है कि मेरे में कितना राग भरा पड़ा है, कितना द्वेष भरा है। सच्चाई से मुख मोड़नेसे, भागनेसे, पलायन करनेसे, समस्या का हल नहीं होता, समाधान नहीं होता।

विपश्यना इसीलिए है कि अन्तर्मुखी होकर अपने आपको देखें। जैसे है वैसे देखें। यदि इस समय मेरा चित्त राग रंजित है, मोह-विमूढित है तो उसे ऐसा ही देखना है। यदि रोगी अपने सही रोगको जान लेता है, कारणको पहचान लेता है, तो कारण दूर करके रोगसे विमुक्त हो जाता है। जो रोगी रहते हुए भी इस धोखेमें रहता है कि मैं रोगी नहीं हूं, वह कभी रोगसे मुक्त नहीं हो सकता। सारा जीवन धोखे में ही बीत जायेगा। अपने दोषका दर्शन करना है, दुखःका दर्शन करना है। दुखःका दर्शन करनेका मतलब निराशामें डूबना नहीं है।

अगर धर्म केवल यही बताता कि सर्वत्र दुःख है, जन्मसे लेकर मृत्यु तक दुःख ही दुःख है और इस दुःखका कोई निस्तार नहीं है तो सचमुच बड़ी निराशा की बात होती। ऐसा धर्म हमारे कामका नहीं होता। पर कितने कल्याणकी बात हुई कि जो सच्चाई है दुःखकी उसे स्वीकार करनेके साथ-साथ यह भी स्वीकार कर रहे हैं कि दुःख तो है पर दुःख से बाहर निकलनेका रास्ता भी है। इस सच्चाईमें कितनी आशा भरी हुई है। सारा जीवन आशासे भर जाय। निराशाका नाम न रहे। धर्म में आशा, जरा भी निराशा नहीं। सम्पूर्ण दुःख - विमुक्ति का रास्ता जो मिल गया। और रास्ता भी ऐसा कि तत्काल फलदायी। इस पर एक-एक कदम चलकर देखें किस प्रकार दुःखके बाहर आ रहे हैं। जितना अभ्यास करते हैं, उतना मैल छुटता जा रहा है, उतना भार उतरता जा रहा है। इसी जीवनमें जब इसका प्रभाव आने लगेगा, कितनी आशा जागेगी। आंचल बहुत मैला है। उसे देखकर रोयेंगे नहीं। साबुन जो मिल गयी। साबुनको इस्तेमाल करना भी आ गया। अब साबुन इस्तेमाल करेंगे। निराशा कहाँ?

धम्म वाणी

बहुम्पि चे सहितं भासमानो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपो 'व गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति॥

धम्मपद–१|१९

जो प्रमादी है, वह चाहे कितनी ही संहिताओं याने धर्म–ग्रंथोंका पाठ करे परन्तु जो नर उसके अनुसार आचरण नहीं करता, वह दूसरोंकी गायें गिननेवाले ग्वालेकी भांति "श्रमणत्व" का अधिकारी नहीं होता।

एक बात ठीक तरहसे समझ लेनी होगी कि अपने दुःखोंके लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं अन्य कोई नहीं। हम स्वयं ही अपने पागलपनमें, नादानीमें, अज्ञान अवस्थामें, अपने भीतर मैल पर मैल इकट्ठा करते रहते हैं और परिणामतः व्याकुल होते रहते हैं। इस मैल को हमने चढ़ाया है, हमें ही निकालना होगा। दूसरा कोई क्या करेगा? दूसरा तो बड़े प्यार से रास्ता बता सकता है। रास्ते पर चलना तो हमें ही पड़ेगा। इसीलिए अन्तर्मुखी हो रहे हैं, स्व-मुखी हो रहे हैं,। पराङ्गमुखीतो बहुत रहे। बहिर्मुखी तो बहुत रहे। अब स्वमुखी होकर प्रज्ञा जगाना है।

ठीक तरहसे समझें कि प्रज्ञा क्या है? उन दिनोंकी भाषामें प्रज्ञा का अर्थ होता था "पकारेन जानेति ति पञ्ञा" नाना प्रकारसे जानना प्रज्ञा है। अनेकानेक दृष्टिसे देखना प्रज्ञा है। एकांगी दृष्टिसे किसी भी व्यक्ति-वस्तु को, घटना-स्थितिको, देखते हैं तो आंशिक दर्शन मिथ्या दर्शन है, भ्रामक है। अनेकांत दृष्टिसे देखने लगें, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से उसी बातको देखने लगें तो सर्वांगीण दर्शन होने लगे। सम्पूर्ण दर्शन होने लगे। बात ठीक-ठीक समझ में आ जाय। प्रज्ञा इसीलिए है कि अनेकांत दृष्टिसे देखें, एकांत दृष्टि से नहीं। जिसको सर्वांगीण दर्शन होने लगा, बात ठीक-ठीक समझमें आने लगी, उसका हर कदम ठीक होगा। हर काम ठीक होगा, हर निर्णय ठीक होगा। जब अपने भीतर संवेदना को देखते हैं तो एक और दृष्टि जागती है। भीतर देखनेकी दृष्टि जागती है। "विमूढानानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः"। यह है ज्ञान-चक्षु से अपने भीतर देखने की प्रज्ञा।

बाहर कोई घटना घटी, किसीने गाली दी, अपमान किया, कोई अनचाही बात हो गयी कि प्रतिक्रिया होने लगी भीतर ही भीतर। आगसी जलने लगी। दुःखका कारण भी भीतर दीखने लगा, दुःखका निवारण भी भीतर दीखने लगा। एकदम दीखने लगेगा। साधनामें जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे और भी अनेक दृष्टियोंसे देखने लगेंगे। यदि किसीने अपमान किया तो आज तो यही कहते हैं कि शत-प्रतिशत वह व्यक्ति जिम्मेदार है। जब विपश्यनामें पकने लगेंगे तो यह कहने लगेंगे कि यह जो मुझे दुःख हुआ, किसी के अपमान करनेसे दुःख हुआ तो आधा वह व्यक्ति जिम्मेवार है और आधा जिम्मेवार मैं हूँ। और आगे बढ़ेंगे तो यह स्पष्ट होगा कि मेरे सुख या दुःखका शत प्रतिशत मैं ही जिम्मेवार हूं और कोई नहीं। यह बात तर्क-वितर्कसे समझ में नहीं आती। जब अन्तर्मुखी होकर अपने आपको देखने लगेंगे तो मालूम होगा दुःख कहाँ शुरू होता है? कैसे शुरू होता है? कैसे बढ़ता है? संवेदनाओंसे जानने लगेंगे। शरीरमें भिन्न प्रकारकी संवेदना होती है। संवेदनाओं को देखकर हम भीतर की सच्चाइयाँ जानने लगेंगे। जैसे - जैसे साधनामें पुष्ट होते जायेंगे; तुरन्त मालूम होगा कि भीतर विकार जागते ही व्याकुलता आती है। सामनेके व्यक्तिके मनमें यदि विकार जागा है, क्रोध जागा है तो उस की व्याकुलता भी मालूम होने लगेगी। एक समय तो ऐसा भी आयेगा साधक के जीवनमे जबकि वह अन्य व्यक्तियों की संवेदनाओं को भी महसूस करने लगेगा। ठीक वैसे ही जैसे कि अपनी संवेदनाए महसूस करता है। जब किसी गाली देनेवाले क्रुद्ध व्यक्तिके भीतरकी तपन स्वयं महसूस करने लगेगा तो कैसे उस तप्त व्याकुल व्यक्ति की और अंगारे फेकेंगा? उस पर तो शीतल जल ही डालेगा।

इस देशमें मानसके बड़े-बड़े धनवन्तरि हुए। उन्होने अन्तर्मनकी खूब खोज की। भीतरी सत्यका बहुत शोध हुआ, अनुसंधान हुआ। जब अन्तर्मुखी होकर सच्चाईको देखने लगे तो मालूम हुआ कि जब-जब चित्त विकारोंसे विकृत होता है, तब-तब व्याकुलता आती है। जब क्रोध आता है तो अपने साथ दुःख ही लेकर आता है।

अनुसंधान करते-करते एक सीमा तक पहुचे तो एक रास्ता मिला -- जब-जब विकार जागे तब-तब चित्तको किसी दूसरे काम में लगा दें। जिसके प्रति श्रद्धा है उसका नाम जपने लगें, उसका ध्यान करने लगें। तो मनको एक अन्य ओर मोड़ दिया। इससे लाभ हुआ। रोगको खोजा और रोगकी औषध भी खोजी। पर पूरा लाभ नहीं हुआ। लेकिन इस देशमें ऐसे भी महापुरुष हुए जिन्होने यह खोज यहीं समाप्त नहीं की। वे अन्तर्मनकी और गहराइयोंमे उतरे और पाया कि केवल चेतन चित्तको किसी अन्य ओर लगानेसे पूरा लाभ नहीं होता। यह सारा अचेतन और अर्धचेतन मन तो भीतर ही भीतर गांठे बांधता ही रहता है अन्तर्मनकी गहराइयों में जहाँ विकार गहरा चला गया वहाँ ग्रंथि पर ग्रंथि बंधती ही जा रही है। अन्तर्मनकी खोज करते-करते सारे शरीर संबंधोंको देख लिया। सारे चित्त संबंधो को देख लिया और इन दोनोंका अतिक्रमण कर इनके परे की जो अवस्था है, जो नित्य है, शास्वत है, ध्रुव है, उसे भी देख लिया। इस प्रकार स्वयं अनुभूति द्वारा परम सत्यको जान लिया तो प्रकृतिका सारा रहस्य समझमें आ गया। उन्होने बतलाया कि जीवनकी कठिनाइयोंसे भागो मत, अभिमुख होकर उनका सामना करो। क्रोध आया तो क्रोधको देखो, भय आया तो भयको देखो। इस प्रकार यदि देखना आ गया तो इन विकारोंका शमन होने लगेगा। "उपज्झित्वा निरूज्झन्ति तेसं उपसमो सुखो"। उदय हुआ, नष्ट हुआ एकदम शमन हो गया। मिलने लगा सुख।

लेकिन एक बड़ी समस्या फिर रह गयी। क्रोध कैसे देखा जाय? विकार को कैसे देखा जाय? जब क्रोध आता है तो होश ही नही रहता। क्रोधको देखें कैसे? कभी यह होश भी आ जाय कि क्रोध आया है और उसे देखना है। परन्तु जब देखनेका प्रयत्न किया जाय तो यही होगा कि जिस घटना को लेकर क्रोध आया है, जिस व्यक्ति या वस्तुके कारण क्रोध पैदा हुआ उसीका बार-बार स्मरण होगा। वह आलंबन उद्दीपनका काम करेगा। सही मानेमें क्रोध तब ही देखा जा सकेगा, जब उसका आलंबन काट दिया जाय। पर अमूर्त क्रोध, अमूर्त वासना को कैसे देखें? तो उन महापुरुषोनें एक और रास्ता खोजा। धर्म बुद्धि-विलासके लिए थोड़े है? अनुभूतियों से जाना गया धर्म ही वास्तवमें धर्म है।

अनुभूतियोंके स्तर पर सत्यके दर्शन करते हुए एक महत्वपूर्ण बात और देखी गयी। जब जब चित्त पर कोई विकार जागता है तो शरीरके स्तर पर दो घटनाएँ तत्क्षण घटनी शुरू हो जाती हैं। बहुत स्थूल स्तर पर सांस अपनी स्वाभाविकता खो देता है। अस्वाभाविक हो जाता है और सूक्ष्म स्तर पर सारे शरीरमें कहीं न कहीं, कोई न कोई जीव-रासायनिक प्रतिक्रिया तीव्र रूपसे शुरू हो जाती है। कोई संवेदना शुरु हो जाती है। हो ही जाती है। क्रोध आया तो सारे शरीरमें गर्मी आनी शुरू होगी। वासना जागी तो स्पंदन शुरू होगा। भय जागा तो कंपन शुरू होगा। प्रकृतिका यह नियम है। यह चित्त-

धारा और शरीर–धारा अलग नहीं है। दोनोंकी याने "नाम–रूप" की यह धारा, जीवनकी यह धारा एक साथ चलती है। अन्योन्याश्रित है। एक–दूसरेका, एक–दूसरे पर प्रतिक्षण प्रभाव पड़ते रहता है। इसीलिए इन्हे सहज कहा गया। सहजात कहा गया। एक साथ उत्पन्न होते हैं। जहाँ चित्तमें विकार उत्पन्न हुआ, साथ–साथ शरीरमें संवेदना उत्पन्न हुई। अमूर्त विकार को साक्षात्कार करके देखना साधारण व्यक्तिके लिए आसान नहीं है। पर धर्म तो साधारण व्यक्ति के लिए है। अतः साधारण व्यक्तिके लिए रास्ता दिया गया कि विकार के कारण इस शरीरमें जो कुछ भी हो रहा है, उसे देख। सांस को देखना शुरू कर। सांस देखते–देखते संवेदओंको देखना शुरू कर। उत्पन्न विकार को देखनेका काम अपने आप शुरू हो जायेगा।

रोज रोज विपश्यनाके अभ्याससे इतना पक जायेंगे कि ज्योंही कुछ हुआ, सांसमें जरा भी अस्वाभाविकता आयी, चेतावनी मिल गयी। तुरंत सांसको देखने लगेंगे। संवेदना जागी, तुरन्त संवेदनाको देखने लगेंगे। विकारका आवलंन कोई भी हो –– क्रोध हो, वासना हो या और कुछ, एकदम क्षीण होने लगेगा। सांस और संवेदना देखेंगे तो बाह्य कारण को इतना महत्व नहीं देंगे। क्रोध आया तो संवेदना ही देखी। क्रोध क्षीण होता चला जायेगा। न दमन किया, न खुली छूट दी। दमन और छूट से बचनेके लिए मध्यम मार्ग अपनाया। केवल देखो! विपश्यना करो!

जब अन्तरर्मुखी होकर देखनेका काम शुरू करेंगे तो जीवन जीनेका रास्ता मिल जायेगा। जब–जब जीवनमें कोई घटना घटेगी और हमें व्याकुल करेगी तो एकदम सांस को देखने लगेंगे, संवेदनाओंको देखने लगेंगे। घटनाका प्रभाव नहीं होगा। अन्ध प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। यदि अंध प्रतिक्रिया हो भी गयी तो लंबे अर्से तक नहीं चलेगी। ज्यों–ज्यों साधनामें पकने लगेंगे, विकारभरी व्याकुलताका समय कम होने लगेगा। साधना की सफलताका यही मापदंड होगा। समय तो लगेगा ही। स्वभावको पलटनेमें, सुधारनेमें समय तो चाहिए ही। धीरे–धीरे खूब समझमें आने लगेगा कि हमारे दुःखका कारण बाहरके व्यक्तिओंमें, वस्तुओंमें, घटनाओंमें नही है। भीतर ही है। उसे दूर करना है।

ज्यों–ज्यों अन्तर्मुखी होकर साधनामें पुष्ट होते जायेंगे, चित्तधारा- के चार चेतना–खण्डोंकी प्रक्रिया अच्छी तरहसे समझने लगेंगे। जो विज्ञान खंड है वह तो केवल जाननेका काम करता है। जो संज्ञा है वही धोखा देती है, पूर्व संस्कारोंसे प्रभावित होती है। अतः सही रूपसे पहचाननेमें भूल करती हैं। जैसी पहचान होती है वैसी ही वेदना होती है और फिर वैसी ही प्रतिक्रिया होती है। यह संज्ञा जैसी छाप बनायेगी, वैसी ही प्रतिक्रिया होगी। यह भी ठीक तरहसे स्पष्ट होने लगेगा कि संज्ञाका निर्माण हम ही कर रहे हैं। इसमें दूसरा व्यक्ति क्या करेगा? यह बात प्रवचनोंसे समझमें नहीं आयेगी। बुद्धिविलाससे समझमें नहीं आयेगी। जितने–जितने अनुभवमें पकेंगे, भीतरसे संवेदनाको देखनेके अनुभवमें पकेंगे, हर संवेदना गहरी सच्चाईकी ओर ले जायेगी। संवेदनाके मूल कारणकी ओर ले जायेगी। किसी अमुक संवेदनासे आनंद हुआ, सुख हुआ, दुःख हुआ। यह क्यों हुआ? एकदम समझमें आ जायेगा। जहाँ संवेदना को साक्षीभाव- से देखने लगेंगे, सारी बातें उभर कर सामने आने लगेंगी। पता लगेगा कि कारण तो इस "मैं–मेरे" में है। इस "ममभाव" में, इस "अहं- भाव" में है। इस "मैं" के साथ हुई गहरी आसक्ति में है। जो-जो संबंध किसी व्यक्तिके साथ जुड़ता है: वह "मैं" और "मेरे" तथा "मेरे–सपनों" को लेकर ही जुड़ता है। यदि कोई व्यक्ति बहुत प्यारा लगता है तो इसलिए लगता है कि वह मेरे सपनोंमें सहायक है। जरासा पता लगे कि वह व्यक्ति मेरे सपनोंके पूरा होने में बाधक है तो कितना ही प्यारा क्यों न हो, सारा प्यार समाप्त हो जाता है। जिसे हम अपना कहते हैं, स्वजन कहते हैं, जिनके प्रति खूब प्यार उमड़ता लगता है, वस्तुतः वह प्यार उस व्यक्तिके प्रति नहीं, अपने सपनोंके प्रति है। अपने आपके प्रति प्यार है, अपनी कामनाओंके प्रति प्यार है। यह बात अनुभूतिसे जब संवेदनाओंको देखेंगे तो खूब समझमें आने लगेगी। यह बात जितनी–जितनी समझमें आने लगेगी, विपश्यनामें पकते चले जायेंगे। समझेंगे स्वप्न लेना उतनी बुरी बात नहीं है परन्तु स्वप्नोंके साथ चिपक जाना बहुत बुरा है, बहुत व्याकुल ता लाता है। सारी बातें जब अन्तर्मुखी होकर समझने लगेंगे तो जीवनके व्यवहार में सुधार आयेगा ही।

जीवनमें धर्मका प्रभाव आना ही चाहिए। आ रहा है तो कामकी बात है। अन्यथा धोखा है। लोगोंके साथ मेरा व्यवहार सुधर रहा है या नहीं? साधनाकी सफलताका यही मापदण्ड है। यदि कोई व्यक्ति हमारे साथ दुर्व्यवहार करेगा तो प्रतीत होगा कि बेचारा अन्दरसे कितना दुःखी है, तप्त है। उसके प्रति क्रोध नहीं जागेगा। घृणा नहीं जागेगी। उसके प्रति मैत्री जागने लगेगी। करुणा जागने लगेगी।

जीवनमें बहुत बार ऐसी स्थिति आयेगी, जब कड़ाईसे काम करना पडेगा। लेकिन भीतर कटुता नहीं जागने देंगे। भीतर तो प्यार और करुणा ही होगी। जीवनमें आवश्यकता पड़ने पर अन्यका सामना करना होगा। धर्मका बड़ा बल होता है। धर्म कायरता नहीं सिखाता, परिस्थितियोंका सामना करनेकी क्षमता देता है। लेकिन अन्यायका सामना करते समय व्याकुलता नहीं होगी। अन्यायीके प्रति क्रोध नहीं होगा। प्यार होगा, करुणा होगी। यदि कोई नम्र भाषामें समझता ही नहीं है तो कठोर भाषाका व्यवहार भी जीवनमें करना पड़ेगा। लेकिन ऐसी परिस्थितियोंमें जब कठोर व्यवहार करना पडे, मनमें करुणा ही होगी। ठीक इसी प्रकार जैसी मांके हृदयमें अपने बच्चेके प्रति करुणा होती है और बच्चेको गल्ती से रोकनेके लिए मां उसके प्रति कठोरताका व्यवहार भी करती है। यदि रोगी बच्चा सन्निपातमें आकर मां को गाली भी दे तो मां के हृदयमें असीम प्यार ही उमड़ता है, करुणा ही उमड़ती है। हमारा व्यवहार भी इसी प्रकार करुणामय होगा। हमारे सारे व्यवहारका आधार प्यार और करुणा होगा।

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

(पू. गुरुदेवके प्रवचनका श्री. रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

विशेष : संलग्न दो प्रपत्र देखें।

– भावी शिविर –

शि. क्र.	स्थान	दिनांक से तक	संचालक	शि. क्र.	स्थान	दिनांक से तक	संचालक
आर.एस./२	काठमांडो	३१-१० से ११-११-८२	श्री रामसिंह	एन.एच./५	जलपाई गुडी	२-११ से १३-११-८२	श्री एन. एच. पारीख

संपर्क– श्री. फणीन्द्रलाल मुत्सद्दी, मुत्सद्दी इंजिनिअरिंग वर्कशॉप पो. काल, जलपाई गुड़ी (प. बंगाल)। अथवा
श्री सुदर्शन ढंढारिया, ४८–डी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता–७०० ००७. फोन : ३४४७९२

आर.एच./६	इगतपुरी	२९-११ से १०-१२-८२	श्री एन. एच. पारीख	आर.एस./३	हैदराबाद	५-१२ से १६-१२-८२	श्री रामसिंह
आर.एस./४	इगतपुरी	२१-१२ से १-१-८३	श्री रामसिंह				
२२३	जयपुर	१८-११-८२ से २९-११-८२	हिंदी	२२४	इगतपुरी	१०-१२-८२ से २१-१२-८२	हिंदी
२२५	इगतपुरी	१-१-८३ से १२-१-८३	अंग्रेजी				

पू. गुरुजीका स्वयं शिविर* – इगतपुरी १८-१-८३ से ३०-१-८३

१) तीस दिनका दीर्घ शिविर* – इगतपुरी ३०-११-८२ से ३१-१२-८२

२) तीस दिनका दीर्घ शिविर* – इगतपुरी १-१-८३ से ३०-१-८३

*इन शिविरोंमें पू. गुरुजी द्वारा स्वीकृत पुराने साधक ही प्रवेश पा सकेंगे। अन्य सम्पर्कोंके लिए कृपया पिछला अंक देखें।

ग्राम : प्रेमकेबल फोन : ४०३५१/४०५४७

मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं लिमिटेड

१४/१५ एफ कॅनॉट सर्कल

नई दिल्ली–११०००१

की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

आ तो गंगा धरम की, हुवै मुक्त जो न्हाय।
धरम न कीं कै बाप को, जो धारै सो पाय॥
जाण्यो समझ्यो धरम नै, पर न कर्‌यो व्यवहार।
तो बिरथा बोझा मर्‌यो, लियां परायो भार॥
धरम पंथ चालै नहीं, केवल बांचै ग्रंथ।
बैठ्यां मंजिल ना मिलै, पग बिन कटै न पंथ॥
दवा बिचारी के करै? सेयां ही सुख होय।
धरम बापड़ो के करै? धार्‌यां ही हित होय॥
जीवन मँह धारण कर्‌यां, धरम होय फलवन्त।
बिन ओसध सेवन कर्‌यां, कठै रोग को अन्त॥
सिच्छा देणो तो सरल, पालण करड़ो होय।
सरल सरल तो सै करै, करड़ो करै न कोय॥

दोहे धर्म के

बाहर भीतर एक रस, सरल स्वच्छ व्यवहार।
कथनी करनी एक सी, यही धर्म का सार॥
धारे तो ही धर्म है, वरना कोरी बात।
सूरज उगे प्रभात है, वरना काली रात॥
चर्चा ही चर्चा करे, धारण करे न कोय।
धर्म बिचारा क्या करे? धारे ही सुख होय॥
शब्द बिचारा क्या करे? अर्थ न समझे कोय।
अर्थ बिचारा क्या करे? धारण करे न कोय॥
लड्डू लड्डू बोलते, जीभ न चखे मिठास।
पानी पानी बोलते, किसकी बुझती प्यास॥
जीवन सारा खो दिया, ग्रन्थ पढ़न्त पढ़न्त।
तोते मैना की तरह, नाम रटन्त रटन्त॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ११३५१०. ◉ मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ◉ पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/– ◉ वार्षिक शुल्क रु. ५/–, आजीवन शुल्क रु. ५१/–

"विपश्यना" 10/82

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

To

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)